गाँधी ने भी कई भूलें की और हम उन्हें महान मानते रहे

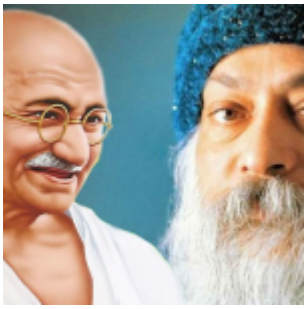

हां, करते हैं। महापुरुष भी भूलें करते हैं। एक बात है कि महापुरुष कभी छोटी भूल नहीं करते और जब भी भूल करते हैं, बड़ी ही करते हैं। अत: इस भ्रम में रहने की आवश्यकता नहीं है कि महापुरुष भूल नहीं करते। कोई भी महापुरुष इतना पूर्ण नहीं है कि भगवान कहलाने लगे। महापुरुष भूल करता है और कर सकता है। अत: यह आवश्यक नहीं है कि आने वाले लोग उनकी भूलों पर विचार न करें। यह आवश्यक नहीं है कि हम हिंदुस्तान के पांच हजार वर्षों के इतिहास पर विचार करें, वरन यदि हिंदुस्तान के पांच महापुरुषों पर ही ठीक से विचार कर लें तो आने वाले लोग जिस गलत रास्ते पर चलने वाले हैं–उसकी ओर संकेत हो सकेगा। ठीक समय पर भूल सुधार हो जाएगी।

महापुरुष ऊंचाइयों पर चलते हैं, उन ऊंचाइयों पर, जहां आने वाली पीढ़ियां हजारों सालों तक चलेंगी। लेकिन इतना आगे चलने में महापुरुष भी न जाने हजारों साल पहले ही कितनी भूलें कर डालता है और उन भूलों को दुर्भाग्यवश हजारों साल तक आने वाली पीढ़ियां आत्मसात करती रहेंगी। महापुरुष की जातीय भूलें दिखलाई नहीं पड़ती हैं–जातीय भूलों को देखना और समझना कठिन भी है।

मैंने गांधी वर्ष को गांधी की जातीय भूलों की आलोचना का वर्ष माना है। इस एक वर्ष में गांधी पर हम जितनी आलोचना कर सकें, हमें करना चाहिए। हम गांधी की जितनी आलोचना करेंगे, उतना ही परोक्ष रूप से उनके प्रति हमारा प्रेम प्रकट होगा। आलोचना द्वारा हम यह प्रकट करेंगे कि हम गांधी को मुर्दा नहीं समझते हैं, उसे जिंदा समझते हैं। वह और उसके विचार जीवित प्रतीक हैं, तभी तो उस पर विचार करेंगे, उसे समझेंगे और उसकी विचार-परंपरा को आगे बढ़ाएंगे। हम उनकी पूजा नहीं करेंगे। पूजा मरे हुए आदमी की की जाती है, जीवित की नहीं। अत: हम गांधी के विचारों की पूजा नहीं करेंगे।

मैं गुजरात में नहीं था, पंजाब में था। जब लौटा तो मेरी बातों को बड़े-बड़े अजीब अर्थ दे दिए गए थे। इन गलतफहमियों की वजह से मुझे गालियां भी दी जा रही हैं। वैसे गालियों का मुझे कोई भय नहीं है। लेकिन यदि इन गालियों के साथ-साथ गांधी जी के विचारों को लेकर कुछ तर्क हुए हों, कुछ विचार-विनिमय हुआ, तो प्रसन्नता की बात अवश्य हो सकती है और उससे गांधी जी की आत्मा भी शांति अनुभव करेगी।

भूल यह है कि हिंदुस्तान का मस्तिष्क आज तक वैज्ञानिक एवं तकनीकी नहीं हो पाया है। हिंदुस्तान का

मस्तिष्क सदा से अवैज्ञानिक रहा है, तकनीक-विरोधी रहा है। दुनिया में संपत्ति तकनीक और विज्ञान से पैदा होती है। संपत्ति आसमान से नहीं टपकती। अमरीका तीन सौ वर्ष के इतिहास में जगत का सबसे समृद्ध एवं शक्तिशाली देश बन गया।

अत: हिंदुस्तान को यदि प्रगति करनी है तो चरखा और तकली से मुक्त होना पड़ेगा। मैं आशा करता हूं मेरे कहे का सही अर्थ लगाया जाए और उसे सही माने में समझा भी जाए। मैं यह नहीं कहता हूं जो चरखा-तकली से कमा रहे हैं उनकी कमाई पर हम लात मार दें, यह भी मैं नहीं कहता हूं कि खादी का उत्पादन हम बंद कर दें। मैं कहना यह चाहता हूं कि खादी-तकली हमारे चिंतन का प्रतीक न बनें। हमारे चिंतन के प्रतीक यदि इतने पिछड़े हुए होंगे तो हम आने वाली दुनिया में ऊपर नहीं उठ सकते हैं। हिंदुस्तान यदि भूखा मरेगा तो उसका जुम्मा तकनीक-विरोधी दृष्टिकोण पर होगा। यदि गांधी की पूरी बात मान ली जाए, तो भारत में ही करीब पच्चीस करोड़ लोगों को मृत्यु के फंदे में ढकेलना पड़ेगा। वह मृत्यु अहिंसक गांधी के सिर पड़ेगी।

अल्डुअस हक्सले ने कहीं कहा है कि यदि गांधी की बात सारी दुनिया मान ले तो पृथ्वी की आधी आबादी को नष्ट हो जाना पड़ेगा। साढ़े तीन अरब लोगों में से पौने दो अरब लोगों को मरना पड़ेगा। क्योंकि तकनीक के विकास के कारण ही मनुष्य की आबादी बढ़ी है। जब तक तकनीकी विकास नहीं हुआ था तब तक दुनिया की आबादी इस भांति बढ़ ही नहीं सकती थी। शायद बुद्ध के समय सारी दुनिया की आबादी दो-अढ़ाई करोड़ से ज्यादा नहीं थी। यदि हमें पीछे राम-राज्य की तरफ लौटना हो तो यह जागतिक आत्मघात, यूनिवर्सल सुसाइड ही कहा जा सकता है। चंगीज, तैमूर, सिकंदर, नेपोलियन, हिटलर, स्टैलिन, माओ–सब मिल कर भी इतने लोगों को नहीं मार सकते हैं जितनों को अकेले गांधी-दर्शन मार डाल सकता है!

गांधी का विचार तकनीक-विरोधी है और गांधी का यह तकनीक-विरोधी विचार ही भारत को दरिद्र बनाए रखने का कारण बनेगा। इसी कारण इस पर ठीक से सोच-समझ लेना आवश्यक है। यह तकनीक-विरोधी हमारी परंपरा तो पांच हजार वर्ष पुरानी है और इसीलिए हमें चारों ओर का सिलसिला भी ठीक-ठीक ही लगता है। इसलिए लगता भी है कि क्या करना है जरूरतें बढ़ा कर, क्या करना है बड़ी मशीनें बना कर, क्या करना है केंद्रीकरण से?

लेकिन हमें यह मालूम होना चाहिए कि केंद्रीकरण के बिना, बिना बड़े उद्योगों के, संपदा पैदा हो ही नहीं सकती है। संपदा पैदा करनी है तो केंद्रीकरण की व्यवस्था करनी ही होगी। गांधी विकेंद्रीकरण के पक्ष में हैं, तो मैं यही कहता हूं कि यह विकेंद्रीकरण ही आत्मघात सिद्ध होगा। सच बात तो यह है कि यदि गांधी को छोड़ कर किसी अन्य आदमी ने विकेंद्रीकरण की और चरखा-तकली की बातें की होतीं तो हम उस पर हंसते। हम उस आदमी को बेवकूफ कहते। लेकिन गांधी इतने महिमापूर्ण व्यक्ति हैं कि उनकी नासमझी की बातें भी हमें पवित्र मालूम होती हैं।

गांधी के व्यक्तित्व में ही कुछ ऐसी बात थी कि वे हमसे यदि दोषपूर्ण एवं असंगत बातें भी कहेंगे तो भी हम उसे परम, सिद्ध मंत्र की तरह स्वीकार करेंगे। गांधी की ये बातें यदि और कोई करता तो हम उसको सपने में भी स्वीकार नहीं करते, क्योंकि हम जानते थे कि वे न तो विवेकपूर्ण हैं, न बुद्धिमत्ता पूर्ण हैं और

न ही भविष्य में उनसे देश का कोई भला ही होने वाला है। इससे सिद्ध होता है कि गांधी अदभुत व्यक्ति थे जो हर प्रकार की बात चाहे वह गलत हो या उलटी, सही प्रमाणित कर सकते थे। यदि कोई साधारण आदमी कहे कि तकली कातो ओर देश आजाद हो जाएगा तो हम मानेंगे ही नहीं, बल्कि उसकी बात पर हंसेंगे। लेकिन गांधी जैसे आदमी पर हंसना कठिन है।

गांधी जी ने जो सोचा वह ठीक भी हो सकता है और त्रुटिपूर्ण भी। यह कोई अनिवार्यता नहीं है कि गांधी जी ने जो कुछ सोच लिया, वह ध्रुव सत्य है और वह त्रुटिपूर्ण हो ही नहीं सकता। दुनिया में अनिवार्यता किसी भी चीज की नहीं है। न्यूटन को जो ठीक लगा वह न्यूटन ने किया। आइंस्टीन को जो ठीक लगता वह आइंस्टीन करता है। दोनों का विरोधाभास यदि हो भी जाए तो इसका अर्थ यह नहीं कि दोनों एक-दूसरे के शत्रु हो जाएंगे। आइंस्टीन तो न्यूटन के सिद्धांतों को आगे बढ़ाने वाला होगा, उसे गति प्रदान करने वाला होगा और प्रगति का यही क्रम भी रहता है।

मैं कोई गांधी का शत्रु नहीं हूं। मेरे हृदय में उनके प्रति जितना प्रेम है, श्रद्धा है, शायद ही अन्य किसी पुरुष के प्रति हो। लेकिन कठिनाई यह है कि उनके थोथे अनुयायी यह प्रचारित करते हैं कि मैं उनका शत्रु हूं तो यह बच्चों जैसी नादानी और मूर्खता ही कही जाएगी। गांधी के व्यक्तित्व पर मुझे शक नहीं है। लेकिन इसका यह अर्थ तो नहीं कि गांधी जो कहते हैं वह सब सही हो सकता है, सब उपयोगी हो सकता है। ऐसा सोचना स्वयं को धोखा देना होगा, खतरनाक होगा।

कई लोग व्यक्तित्व के साथ कृतित्व को जोड़ने के आदी हो गए हैं। किसी भी महापुरुष ने मनुष्य के, समाज के रूपांतरण के संबंध में इतना गहरा विचार नहीं किया जितना कि मार्क्स ने किया है। लेकिन मार्क्स सुबह से लेकर शाम तक सिगरेट पीता था। अब अगर कोई समाजवादी यह समझे कि मुझे भी सुबह से शाम तक सिगरेट पीनी चाहिए केवल इसलिए क्योंकि मार्क्स सिगरेट पीता था और मार्क्स ने जो भी व्यक्तिगत स्तर पर गलत काम किए वह भी उन्हें दोहराएगा तो उसे कोई भी संगतिपूर्ण नहीं कहेगा।

हर बड़े आदमी की अपनी कुछ व्यक्तिगत रुझान होती है, अपने जीने का ढंग होता है। उसे जो प्रीतिकर होता है, वह करता है लेकिन पीछे आने वाले लोगों को निरंतर सचेत होकर सोचना जरूरी है कि क्या उसके और देश के लिए, भविष्य के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

मुझे ऐसा दिख पड़ता है कि यदि हम गांधी के इस तकली-चरखा के जीवन-दर्शन में डूबे रहे, उसी में अपनी शक्ति और समय नष्ट करते रहे तो यह देश औद्योगिक क्रांति में से नहीं गुजर सकेगा। यह स्मरण रहे कि आने वाले पचास वर्षों में सारी दुनिया से इतनी बड़ी क्रांति गुजरने वाली है कि हमारे बीच और पश्चिम के बीच इतना बड़ा फासला हो जाएगा कि शायद इस फासले को हमारी आने वाली पीढ़ियां कभी पूरा न कर सकेंगी। हमें जो भी करना है वह आने वाले बीस वर्षों में अत्यंत तीव्रता से तकनीक के मामले में आधुनिक दुनिया के समझ खड़ा होना है। अन्यथा हम हमेशा के लिए पिछड़ जाएंगे जैसा अब तक होता रहा है।

तकनीक यानी मनुष्य की इंद्रियों और क्षमताओं का विस्तार। आंख थोड़ी दूर ही देख सकती है। लेकिन दूरबीन बहुत दूर तक देख सकती है। वह आंख का ही विस्तार है। अब तो राडार आंखें भी हैं। और जिन्हें

चांद-तारों पर पहुंचना है, उनके लिए खाली आंखें काफी नहीं हो सकती हैं। ऐसे ही शेष सारी तकनीक का भी दर्शन है। हमारा मकान हमारे शरीर का ही विस्तार है। और हमारे हवाई जहाज हमारे पैरों के। मनुष्य तकनीक के माध्यम से विराट हो गया है। और जो भी उस आयाम में यात्रा करने से इनकार करेंगे वे व्यर्थ ही बौने रह जाएंगे।

गांधी की बातें भारत को बौना करने वाली हैं, उनका चले तो हमें आदि-गुफा-मानव की दुनिया में पहुंचा दें। माना कि कोई इतनी दूर तक उनकी बातें नहीं मानेगा। बुद्धि रहते ऐसा करना सुगम भी नहीं है। लेकिन लंबी पराजय और आलस्य से भरी जाति ऐसी बातें अपने अहंकार को बचाने के लिए भी मान सकती है।

भारत में कुछ ऐसा ही हो रहा है। जिन अंगूरों तक हम नहीं पहुंच पर रहे हैं उन्हें खट्टे कह कर स्वयं का चेहरा बचाया जा रहा है! लेकिन इसमें किसी और का कोई नुकसान नहीं है। हानि होगी तो बस हमारी ही होगी! क्योंकि चाहे झूठे ही सही, बिना स्वाद लिए ही सही, जिसे हम खट्टा मान लेते हैं, उसे पाने की यात्रा बंद हो जाती है। और हमारे खट्टे की घोषणा से दूसरे तो उसे पा नहीं सकते हैं। बल्कि जब उनके चेहरे कहते हैं कि नहीं जो हमने छोड़ा वह खट्टा नहीं था, तो हमारे प्राण और भी संकट में पड़ जाते हैं। लेकिन तब स्वाभिमान बचाने को हम अंगूरों को खट्टे होने का और भी शोरगुल मचाने लगते हैं। यह एक दुष्चक्र है। और भारत इसमें बुरी तरह उलझ गया है।

हिंदुस्तान की दीनता और दरिद्रता की कथाएं यह बतला रही हैं कि हमने कभी टेक्नालॉजी विकसित करने का प्रयास ही नहीं किया। हम यही कहते रहे कि हम झोपड़ों में रह लेंगे, अपना चरखा कात लेंगे, अपना कपड़ा बुन लेंगे और हमें क्या आवश्यकता है अन्य चीजों की? हम अपनी जगह बैठे रहे और दुनिया तेजी से विकसित होती चली गई।

चीन ने हम पर हमला किया तो हम पीछे हट आए और जितनी जमीन हमने छोड़ी उस पर चीन ने कब्जा कर लिया, वह जमीन उसी की हो गई। अब हम उसकी कोई बात ही नहीं करते। करने की हिम्मत भी करना कठिन है। यह सब इसलिए, क्योंकि तकनीक की दृष्टि से हम चीन से पिछड़े हुए हैं, उससे लड़ने में असमर्थ हैं। एक बड़े गांधीवादी नेता से इस संबंध में मेरी बात होती थी तो उन्होंने कहा, वह जमीन बिल्कुल बेकार है, उसमें घास-फूस भी पैदा नहीं होता है। यह वही खट्टे अंगूरों वाली बात है न?

मनुष्य ने जितनी सयता विकसित की है वह श्रम से मुक्त हो जाने के लिए की है। जब भी कुछ लोग श्रम से मुक्त हो गए तो उन्होंने काव्य रचे, गीत लिखे, चित्र बनाए, संगीत का सृजन किया, परमात्मा की खोज की। इस प्रकार आदमी जितना श्रम से मुक्त होता है उतना ही उसे धर्म, संगीत और साहित्य को विकसित करने का अवसर भी मिलता है। कभी आपने सोचा है कि जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के ही लड़के क्यों हुए? बुद्ध राजा के ही लड़के क्यों हुए? राम और कृष्ण राजा के लड़के क्यों हुए? हिंदुस्तान के सब भगवान राजाओं के लड़के क्यों हुए? उसका भी कारण है। एक दरिद्र आदमी जो दिन भर मजदूरी करके भी पेट नहीं भर सकता है, खाना नहीं जुटा सकता है, थका-मांदा रात को सो जाता है, सुबह उठ कर फिर अपनी मजदूरी में लग जाता है–उसके लिए कहां का परमात्मा, कहां की आत्मा, कहां का दर्शन?

दरिद्र समाज कभी धार्मिक समाज नहीं हो सकता है। हिंदुस्तान दो-अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व समृद्ध था तो वह उस समय धार्मिक भी था। लेकिन आज हिंदुस्तान इतना गरीब और दरिद्र है कि वह धार्मिक नहीं हो सकता है। मैं आपसे दावे से कह सकता हूं कि रूस और अमरीका आने वाले पचास वर्षों में एक नये अर्थ में धार्मिक होना शुरू हो जाएंगे। उनके धार्मिक होने की प्रक्रिया भी प्रारंभ हो गई है।

जब आदमी के पास अतिरिक्त संपत्ति होती है, जब उसके पास श्रम की कमी के कारण समय बचता है, तब पहली बार आदमी की चेतना पृथ्वी से ऊपर उठती है और आकाश की ओर देखती है।

मेरा विरोध गांधी से नहीं, गांधीवादी दर्शन से है। हिंदुस्तान के राजनीतिज्ञों को गांधी से कोई मतलब नहीं है, मतलब है गांधीवादी से। इसलिए गांधीवाद की इतनी भीमकाय तस्वीरें और रंगमंच खड़े कर दिए हैं ताकि उसके पीछे सब-कुछ खेला जा सके, सब-कुछ सही गलत किया जा सके। बीस वर्ष से गांधी की आड़ में एक खेल चल रहा है, गांधीवाद के नाम पर देश का शोषण चल रहा है और गांधीवादियों ने इन बीस वर्षों में देश को नरक की यात्रा करा दी है। गांधीवाद से हम जितनी जल्दी मुक्त हो जावें उतना ही अच्छा होगा और उसी दिन हम सच्चे अर्थों में गांधी को ज्यादा प्रेम और आदर देने में समर्थ हो सकेंगे। इन गांधीवादियों की वजह से ही गांधी का इतना अनादर हो रहा है।

गांधी ने जिस दिन चरखे-तकली की बात की थी तब संभवत: उसकी जरूरत रही होगी। लेकिन वह जरूरत दूसरी थी–न तो औद्योगिक थी, न आर्थिक थी, वरन वह राजनैतिक थी। वे राजनैतिक स्तर पर देश को एकता का प्रतीक देना चाहते थे। लेकिन गांधी के पीछे चलने वाला तबका अभी भी इसी प्रयास में लगा है कि गांधी का वही पुराना प्रतीक हमेशा बना रहे। यह कैसे संभव हो सकता है? आगे चल कर भी वह हमारा प्रतीक कैसे हो सकता है। गांधी के समय की परिस्थितियां उनके साथ ही समाप्त हो गईं और वह बात उन्हीं के साथ चली गई। अब परिस्थितियां और आवश्यकताएं बिल्कुल भिन्न हैं। लेकिन एक गांधीवादी वर्ग अभी भी गांधी के इस चरखे-तकली को हमारी आर्थिक योजनाओं के साथ जोड़ना चाहता है। ऐसा षडयंत्र देश को सदा के लिए अवैज्ञानिक बना देगा। वैसे ही हमारे पास वैज्ञानिक बुद्धि का नितांत अभाव है।

तब मुझे एक ही बात कहनी है कि गांधी जिस देश का निर्माण कर गए हैं, जिसके लिए उन्होंने चालीस-पचास वर्ष मेहनत की, जिसके लिए वे मरे-खपे, जिनके लिए उन्होंने इतना श्रम किया, उस सब पर अनेक अनुयायी एकदम पानी फेरे दे रहे हैं। क्योंकि वे देश को विचार तक करने की स्वतंत्रता नहीं देना चाहते हैं। वे विचार का किसी भी भांति गला घोंटने के लिए उत्सुक हैं। विचार को वे देशद्रोह बतलाते हैं और विचार के लिए आमंत्रण देने को वे षडयंत्र की भूमिका बतलाते हैं।

बहुत से गांधीवादी मेरे मित्र रहे हैं, लेकिन जब मैंने गांधीवादी की आलोचना की, तो मैंने सोचा भी नहीं था कि वे मेरे शत्रु हो जाएंगे। मुझे अनेक पत्र आए हैं और उन पत्रों में यही लिखा है कि मैं आत्मा-परमात्मा की ही बात करूं और कोई अन्य बात नहीं और न ही किसी तरह की राजनीति की बात। आह! तब मुझे ज्ञात हुआ कि आत्मा-परमात्मा की ही बात करवाना भी कैसी राजनीति है! राजनीतिज्ञ मुझे सलाह देते हैं कि मैं सिर्फ धर्म की ही बात करूं।

आह! कैसे कुशल राजनीतिज्ञ हैं! वे मुझे कहते हैं कि देश की और समस्याओं पर बोलने में मेरी प्रतिष्ठा

को हानि पहुंचेगी! अर्थात वे मुझे भी राजनीतिज्ञ बनाना चाहते हैं। क्योंकि प्रतिष्ठा को ध्यान में रख कर जीता है, वही तो राजनीतिज्ञ है! मैं ठहरा एक फकीर–मुझे प्रतिष्ठा से क्या प्रयोजन है? सत्य से जरूर प्रयोजन है–लोक-मंगल से जरूर प्रयोजन है और उसके लिए यदि मेरी कुर्बानी भी हो जाए तो कोई हानि नहीं है।

सच तो यह है कि मेरे पास अब कुर्बान करने को भी तो कुछ नहीं है। मैं भी तो नहीं बचा हूं। उसे भी तो प्रभु को दे चुका हूं। इसलिए अब मैं कुछ कह रहा हूं। ऐसा भी नहीं है। प्रभु की जो मर्जी। वह जो करवाए, मैं उसी के लिए राजी हूं। मैं जो बोलता हूं वह भी तो अब उसी का है। और सलाह ही लेनी होगी तो मैं इन राजनीतिज्ञों से लेने नहीं जाऊंगा। उसके लिए भी तो प्रभु का द्वार मेरे लिए सदा खुला है। इसलिए कोई मेरी या मेरी प्रतिष्ठा की चिंता न करे। चिंता करे उसकी कि जो मैं कह रहा हूं। क्योंकि समय रहते उसकी चिंता करने में देश के भविष्य को व्यर्थ ही गड्ढे में गिरने से बचाया जा सकता है।

मैं मानता हूं कि गांधी ने इस जीवन में नैतिकता की असफलता भी भलीभांति देख ली है। लेकिन, उनके शिष्य यह भी नहीं देख पाए हैं। क्योंकि वे नैतिक भी बे-मन से थे।

नैतिकता गांधी के लिए साधना थी। उससे वे स्वयं धोखे में पड़े, लेकिन उससे वे किसी और को धोखे में नहीं डालना चाहते थे। अनके अनुयायी के लिए नैतिकता आवरण थी, जिससे वे केवल दूसरों को धोखे में डालना चाहते थे। इसीलिए जब सत्ता आई तो गांधी ने सत्ता की बागडोर हाथ में लेने से इनकार कर दिया। क्योंकि उनका दमन हार्दिक था। वे अपने हाथों से अपनी दमित जीवन-व्यवस्था को प्रतिकूल परिस्थितियों में नहीं छोड़ सकते थे। क्योंकि उन प्रतिकूल परिस्थितियों में उस जीवन भर साधी गई व्यवस्था के टूट जाने का भय था। इसीलिए गांधी सत्ता से बचे। लेकिन उनके अनुयायी सत्ता की ओर अपने सब आवरणों को छोड़ कर भागे। और फिर सत्ता ने उनकी सारी कागजी नैतिकता में आग लगा दी। वे स्पष्ट ही अनैतिक हो गए।

यदि गांधी सत्ता में जाते तो उनकी नैतिक व्यवस्था भी टूटती। लेकिन इससे वे अनैतिक नहीं हो जाते वरन धार्मिक होने की उनकी खोज शुरू होती। तब नैतिकता भी साधी जा सकती है यह उनका भ्रम टूटता। और वे उस धर्म की ओर बढ़ते जो कि नीति के अयास और अंत:करण, कांशस के निर्माण से नहीं, वरन जागरण अवेयरनेस और चेतना कांशसनेस को सतत और भी सचेतन करने से उपलब्ध होता है। यही गांधी और गांधीवादियों में भेद था।

वे एक अनूठे व्यक्ति थे। और उनमें धार्मिक व्यक्ति का बीज छिपा था, लेकिन नीति ने उन्हें रास्ते से भटका दिया। शायद उनके अतीत जीवनों की अनैतिकता की ही प्रतिक्रिया, रिएक्शन था। और उनके चित्त की जड़ों में उतरने से ऐसा ही प्रतीत होता है। जैसे प्रारंभ में वे अति कामुक थे। उनके पिता मृत्युशय्या पर थे, लेकिन उस रात्रि भी वे पत्नी से दूर न रह सके। और पत्नी गर्भवती थी। शायद चार-पांच दिन बाद ही उसे बच्चा हुआ। लेकिन होते ही मर गया। शायद यह भी उनके संभोग का ही परिणाम था। और जब वे संभोग में थे तभी पिता चल बसे और घर में हाहाकार मच गया। फिर अति कामुकता के लिए वे कभी अपने को क्षमा नहीं कर पाए। और प्रतिक्रिया में जन्मा उनका ब्रह्मचर्य। निश्चय ही ऐसा ब्रह्मचर्य कामुकता का ही उलटा रूप हो सकता है।

उनका समस्त जीवन-दर्शन ही इस विकृत चित्त-दशा से प्रभावित है। उनकी इस चित्त-दशा के कारण उनके पास एकत्रित होने वाला बड़ा अनुयायी वर्ग–विशेष कर उनके आश्रमों के अंतेवासी किसी न किसी भांति के मानसिक विकारों से पीड़ित वर्गों से ही आ सकते थे। इसलिए गांधी के कारण देश यदि मानसिक रोगग्रस्त व्यक्तियों के हाथ में चला जाता है तो कोई आश्चर्य नहीं है।

गांधी के जीवन का पूर्ण मनो-विश्लेषण, साइको एनालिसिस आवश्यक है। उसमें बड़े कीमती तथ्य हाथ लग सकते हैं। उनके प्रारंभिक जीवन में भय, फियर बहुत गहरा बैठा हुआ प्रतीत होता है। मैंने सुना है कि पहली बार अदालत में बैरिस्टर की भांति बोलते हुए वे इतने भयभीत हो गए थे कि उन्हें मूर्च्छित अवस्था में ही घर लाया गया था। और जो वे उस दिन बोलने को थे, उसकी तैयारी उन्होंने रात भर जाग कर की थी।

इंग्लैंड जाते समय जहाज के कुछ यात्री किसी बंदरगाह पर उन्हें किसी वेश्यालय में ले गए थे। वे नहीं जाना चाहते थे। लेकिन साथियों को 'नहीं' कहने का साहस नहीं जुटा पाए। वेश्या के समझ जाकर उनकी वही स्थिति हो गई जो कि बाद में अदालत में होने को थी। इंग्लैंड में एक युवती उनके प्रेम में पड़ गई थी लेकिन उससे वे यह कहना चाह कर भी कि मैं विवाहित हूं, कहने का साहस नहीं जुटा पाए थे। उनका इतना भयभीत चित्त–उनका इतना भीरु व्यक्तित्व बाद में इतना निर्भय कैसे हो गया? क्या यह भय की ही प्रतिक्रिया नहीं है? भय की प्रतिक्रिया में व्यक्ति निर्भय हो जाता है। अभय नहीं। निर्भय उलटा हो गया भय है। इसलिए निर्भयता फिर जान-बूझ कर भय की स्थितियों को खोजने लगती है। भय की स्थितियों में अपने को ढालने में भी फिर एक विकृत रस की उपलब्धि होने लगती है। और फिर ऐसे मन अपने को विश्वास दिलाता है कि अब में भयभीत नहीं हूं। लेकिन यह भी भय ही है।

क्या गांधी की निर्भयता भय ही नहीं है? क्या उनकी अहिंसा में भय ही उपस्थित नहीं है? मेरे देखे तो ऐसा ही है। भय ने निर्भयता के वस्त्र पहन लिए हैं। वह अभय, फियरलेसनेस इसलिए भी नहीं है, क्योंकि गांधी ईश्वर से भलीभांति और सदा भयभीत हैं। उन्होंने अपने समग्र भय को ईश्वर पर आरोपित कर दिया है। वे कहते भी हैं कि वे ईश्वर को छोड़ और किसी से भी नहीं डरते हैं। अभय में ईश्वर का भी भय नहीं होता है।

साभार – https://oshostsang.wordpress.com/ से